हिन्दी कथा साहित्य में
वृद्ध विमर्श

संपादक : डॉ. दिलीप मेहरा

ISBN - 978-81-950501-8-5

पुस्तक : हिन्दी कथा-साहित्य में वृद्ध विमर्श

संपादक : © डॉ. दिलीप मेहरा

प्रकाशक : उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

A-685 आवास विकास, हंसपुरम्, कानपुर -208 021 (उ.प्र.)

Email : utkarshpublisherskanpur@gmail.com

Mob. : 8707662869, 9554837752

संस्करण : प्रथम, 2021

मूल्य : 1195/-

आवरण सज्जा : तबारक अली, पटकापुर, कानपुर

शब्द-सज्जा : रुद्र ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक : सार्थक डिजिटिल, कानपुर

Hindi Katha Sahitya Mein Vriddha Vimarsh

by : Dr. Dilip Mehra

Price : One thousand One hundred ninty five only.

अनुक्रम

कथा साहित्य

1. वृद्ध विमर्श की अवधारणा
नीलम वाधवानी 15

2. हिन्दी कथा साहित्य : वृद्ध विमर्श की दृष्टि से
डॉ. दिलीप मेहरा 29

3. हिन्दी दलित कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श
डॉ. सुशीला टाकभौरे 40

4. हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श
डॉ. आरिफ महात 51

5. समकालीन कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श
डॉ. धन्यकुमार जिनपाल बिराजदार 61

6. रेत सा तन ढह गया है
प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल 66

7. समाज और साहित्य में बुजुर्गों की दयनीय स्थिति
डॉ. कल्पना गवली 71

8. प्रभा खेतान के कथा-साहित्य में वृद्ध संदर्भ
डॉ. देव्यानी महिड़ा 78

उपन्यास साहित्य

9. अंतिम पड़ाव का जीवन
डॉ. रमेश चंद मीणा 89

10. हिंदी उपन्यासों में वृद्धों के मृत्यु बोध से संबंधित चिंतन और उसका भय
डॉ. रोशन कुमार झा 104

11. हिंदी उपन्यासों में चित्रित वृद्धों के धुंधभरे जीवन
(विशेष सन्दर्भ : गिलिगडु, समय सरगम और अंतिम अरण्य)
डॉ. उषा मिश्रा 113

12. वृद्धावस्था केंद्रित प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास
अंकिता शर्मा 118

13. काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में वृद्ध विमर्श
डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह 124

भी वे वृद्धाश्रम नहीं भेजे जाते। लड़ते झगड़ते अपने घरों में ही रहते हैं। यदि किसी वृद्ध के साथ घर में अन्याय होता है, तब जाति समुदाय के लोग अन्यायी सदस्यों को धिक्कार कर, वृद्धों को उनका सम्मान और स्थान दिलाने में सहयोग देते हैं। इस तरह कह सकते हैं कि मुख्यधारा के हिन्दी कथा साहित्य में 'वृद्ध विमर्श' के समानान्तर हिन्दी दलित कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श इस रूप में उपस्थित है। दलित वृद्धों के जीवन की समस्याओं का निराकरण करना भी वृद्ध विमर्श का उद्देश्य होना चाहिए।

शील–2, गोपाल नगर, तीसरा बस स्टेशन
नागपुर, महाराष्ट्र–440022

4

हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श

डॉ. आरिफ महात

वृद्धावस्था एक स्वाभाविक और प्राकृतिक अवस्था है जो धीरे धीरे अपनी मंजिल की ओर बढ़ती है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ है– पका हुआ, परिपक्व। हमारी संस्कृति में भरे पूरे परिवार और घर में बुजुर्गों की बडी अहमियत है। आधुनिकीकरण से सबसे ज्यादा हानि पारिवारिक जीवन की हुई। आधुनिकीकरण की अंधी दौड़ मे आहिस्ता–आहिस्ता सामूहिक परिवार बिखरने लगा और उसकी जगह एकल परिवार ने ली। एकल परिवार के चलते परिवार में किसी समय श्रध्दा का स्थान रखनेवाले बुजुर्ग उपेक्षित होने लगे। मनुष्य विकास के पथ पर जैसे जैसे अग्रेसित होता गया परिवार से दूर होता गया, और घर के बुजुर्ग का स्थान घर के केंद्र से निकलकर घर के कोने और फिर कब घर के बाहर होता गया पता ही न चला। इसी के चलते समाज और परिवार में होते इस बदलाव का चित्रण साहित्य में देखने मिलता है।

वृद्ध विमर्श का अर्थ है वृद्धाओं की परिस्थितियों का आकलन कर उसे समझना, उससे संबंधित घटनाओं का चिंतन करना, वृद्धों की समस्याओं को समझकर उसका समाधान प्रस्तुत करना। वर्तमान दौर में वृध्द विमर्श की आवश्यकता कुछ ज्यादा ही बनी हुई नजर आती है। भौतिकीकरण के इस दौर में विघटित होते मूल्य, टूटते परिवार, परिवार में बढ़ता अजनबीपन आदि परिस्थितियों में वृद्धों की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। अर्थ तंत्र का बढ़ता प्रभाव और गतिशील जीवन प्रणाली के चलते नई और पुरानी पीढ़ी अपने बीच तालमेल बिठा पाने में असफल हो रही है। जिसके परिणामस्वरूप हम एक–दूसरे से कटते जा रहे हैं। वैश्वीकरण के चलते पारंपरिक मूल्यों में आए बदलाव के चलते बुजुर्गों की तरफ देखने का हमारा नजरिया बदल चुका है। बुजुर्गों के अनुभवों का उपयोग करने की बजाय हममें उसे आउट डेट मानने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसी कारण हर बुजुर्ग आज अनुपयोगी और बेकार वस्तु में तब्दील हो रहा है। मनुष्य प्राणी की यह मानसिकता है कि बेकार और अनुपयोगी वस्तु उसे परेशान करती है। वह उससे छुटकारा पाना चाहता है। यही हाल आज घर के वरिष्ठ नागरिकों का हुआ है ऐसा कहना गलत न होगा।

वृद्धों की समस्याओं पर सबसे पहले विश्व का ध्यान आकर्षित करने का काम अर्जेंटीना ने किया। अर्जेंटीना ने वृद्धों की समस्याओं को लेकर संयुक्त राष्ट्र महासभा का ध्यान खींचा। इसके पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसकी पहल की। वैश्विक स्तर पर और धन की समस्याओं पर विचार विमर्श होते रहे जिसके परिणामस्वरूप बुजुर्गों पर हो रहे अन्याय अत्याचार को दूर करने तथा उन्हें न्याय दिलाने हेतु जन चेतना के उद्देश्य से 14 दिसंबर 1990 को यह निर्णय लिया गया कि प्रतिवर्ष 1 अक्टूबर को अंतर्राष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस मनाया जाएगा। विश्व का पहला अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस 1 अक्टूबर 1991 में मनाया गया। इस परिप्रेक्ष्य में अभी कोशिश की जा रही है की विश्व भर के बुजुर्गों का खयाल रखा जाए, उनको सुख सुविधा मुहैया कराई जाए। इससे पूर्व 1982 में "विश्व स्वास्थ्य संगठन" ने "वृद्धावस्था को सुखी बनाइए" का नारा दिया और "सब के लिए स्वास्थ्य" यह अभियान प्रारंभ किया। भारत में माता–पिता के भरण पोषण, वृद्धाश्रम की स्थापना, बुजुर्गों की चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था और वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के प्रावधान के लिए 2007 में "माता–पिता एवं वरिष्ठ नागरिक भरण–पोषण विधेयक" संसद में पारित किया गया।

साहित्य में वृद्ध विमर्श

साहित्य में प्राचीन काल से ही वृद्धों के जीवन के बारे में चर्चा की गई है। आधुनिक काल के साहित्य में वृद्धों के सामाजिक जीवन के बदलते परिवेश का सटीक चित्रण देखने मिलता है। जो इंसान उम्रभर अपने परिवार के लिए मेहनत करता है, अपने बच्चों को वह पढ़ाता लिखाता है। काबिल बनाता है, लेकिन जीवन के आखिरी पड़ाव पर जब उसे परिवार की सबसे ज्यादा जरूरत महसूस होती है तब उसे अनुपयोगी मानकर उसकी अवहेलना की जाती है। यह पीड़ा उसे जीवित मृत्यु समान लगती है। वह अपने आप को कमजोर और अपाहिज समझने लगता है या घरवालों के द्वारा उसे ऐसा महसूस कराया जाता है। हिंदी कथा साहित्य में भी वृद्धों के जीवन की त्रासदी का मार्मिक चित्रण देखने मिलता है।

गिलिगडु उपन्यास चित्रा मुद्गल द्वारा लिखा गया है। इस उपन्यास में उन्होंने वृद्धों की समस्याओं को बहुत ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। गिलिगडु का शाब्दिक अर्थ 'चिड़िया' है, लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने 'गिलिगडु' शब्द का प्रयोग उपन्यास के बुजुर्ग पात्र कर्नल स्वामी की जुड़वा पोतियों के लिए किया है।

लेखिका ने अपने उपन्यास में तेरह दिनों के वृद्धों के जीवन को केन्द्र में रखा है। जिसे उन्होंने गैर मौजूदगी का नाम दिया है। यह उपन्यास हमारे

तथाकथित सभ्य जीवन की पोल खोलता है, जो बुजुर्गों की समस्या की जड़ में है। सुखी परिवार उसे कहा जाता था जहाँ परिवार के बुजुर्गों को आदर, सम्मान एवं सुख देने के साथ–साथ उन्हें खुश रखना भी उनके संतानों का परम कर्तव्य था। लेकिन वर्तमान समय में इसका अभाव सर्वत्र अनुभव किया जा सकता है। डॉ. अर्चना मिश्रा का कथन है "गिलिगडु उपन्यास में चित्रा जी ने वृद्धों की बेचारगी संवेदनशीलता और जीवन शैली को विस्तार दिया है। पुस्तक के फ्लैप पर लिखी इबारत में भी इस उपन्यास की आधारभूमि की ओर संकेत किया गया है। 'गिलिगडु' चित्रा जी का आकार में छोटा परंतु संवेदनशीलता में कहीं गहरा उपन्यास है। इस उपन्यास में सेवानिवृत्त बुजुर्ग की एक रेखीय कहानी नहीं, जीवन के रंग बहुआयामी रूपों में उभर कर आये हैं।" अपनों के बीच अकेला होने की त्रासदी और पूरे घर में अपने आप को उपयोग विहीन मानने की बेचैनी बाबू जसवंत सिंह को घरवालों से तोड़ती रहती है। इसे और मजबूत घरवालों का स्वार्थी रवैया और घरवालों की उपेक्षा करती है। रिश्तों में जब अपनापन और प्यार खत्म हो जाता है तो रिश्तों को जिया नहीं जाता ढोया जाता है। रिश्ता बोझ बन जाता है। बाबू जसवंतसिंह का और उनके बेटे–बहू और बेटी का रिश्ता कुछ ऐसा ही बन जाता है। "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निसंदेह उनकी बनिसबत मजबूत है।"[1] बाबू जसवंत सिंह अपने आप को बेजान घर के कोने में पड़ी रहने वाली चीज़ मानने को कतई तैयार नहीं हैं। वे अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहने वालों में से हैं। इस काम में उन्हें हौसला मिलता है। कर्नल स्वामी से जो कहते हैं, "मौत जब आएगी, आ जाएगी। किसी भी शक्ल में आ जाएगी। रागड़ेगी, हफ़्ता, महीना, साल या अचानक झपाटे से उठा लेगी। उठा ले। मगर उन कुछेक कष्टकर दिनों की कल्पना में रात–दिन अधमरे होकर जीना जिंदगी का मजाक उड़ाना नहीं।"[2] घरवालों की उपेक्षा और खोखले बनते रिश्ते की कसक और उसकी पीड़ा पर मरहम लगाने का काम सनगुनिया करती है।

बेटा काम की वजह से अमेरिका जा रहा है और वह चाहता है कि बाबूजी को अपने पसंद के किसी आश्रम में रखा जाए। यह बात अपनी बेटी से सुनते ही बाबू जसवंत सिंह बेचैन हो जाते हैं। अपने मित्र कर्नल को ढूँढ़ते हुए जब वो उसके घर पहुँचते हैं तो पता चलता है कि बारह दिन पहले ही वह चल बसे। तब उन्हें कर्नल की पड़ोसन मिसेज श्रीवास्तव से उनके जीवन की त्रासदी पता चलती है। उनके तीन बेटे थे जो शादी करके अलग रहते हैं। उनकी एक बहू अपने डेढ़ साल की जुड़वा बेटियों को छोड़ अपने गुरु के शरण में जाकर रही है और नौबत यह है कि कर्नल को अपनी पोतियों को मिलने के

लिए चोरी छिपे जाना पड़ता है। उनका एक बेटा उनकी संपत्ति के लिए उन्हें पीटता है। उनकी मृत्यु पर उनका बड़ा बेटा बंगलौर से आता है; दाह संस्कार करता है लेकिन चौथे के लिए रुकने के लिए उसके पास समय नहीं है। वह बाकी विधि कार्य बंगलौर में संपन्न करता है। उनकी कहानी बताते हुए मिसेस श्रीवास्तव कहती है कि ऐसी औलादों के होने से बेऔलाद होना अच्छा। इस घटना के बाद वह सनगुनिया से रिश्ता बनाकर कानपुर लौट जाते हैं। साथ ही अपने दाह संस्कार का अधिकार सनगुनियों के बेटे को देते हैं।

ममता कालिया का 'दौड़' उपन्यास बाजारवाद, भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया उपन्यास है, जो हमारे बदलते मानवीय मूल्य, विघटित होते संस्कार और पूज्य माता–पिता के दुख, भय, चिंता, तनाव और अंत में घृणा तक पहुँचकर पाठकों पर गहरा मार्मिक दंश कर जाता है।

रेखा और राकेश इस दांपत्य के दो बेटे हैं पवन और सघन। माता–पिता अपनी पूरी पूंजी लगाकर बेटों को पढ़ा लिखाकर काबिल बनाते हैं। पढ़ लिख कर बेटे अपने करियर की ऊंची उड़ान भरने के लिए घर से बाहर निकल पड़ते हैं। इस संदर्भ में पवन अपने पिता से कहता है– "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है कैरियर है। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए तभी मैं कामयाब रहूंगा।"[3]

उनका दूसरा बेटा सघन भी सॉफ्टवेयर कंपनी में नौकरी के चलते ताइवान चला जाता है। दो बेटों के होने के बावजूद रेखा और राकेश अकेले रहने के लिए विवश हो जाते हैं। उनके बुढ़ापे के अभिशप्त जीवन का चित्रण ममता कालिया ने यहाँ मार्मिकता से किया है। अपने करियर के चक्कर में इन लोगों के पास अपने माँ–बाप के लिए वक्त नहीं है। यहाँ तक कि जब राकेश की मौत हो जाती है तभी उनके बेटे उनका दाह संस्कार करने के लिए उपस्थित नहीं रहते। उपन्यास में ममता कालिया ने अन्य पात्रों के माध्यम से बुढ़ापे में अकेले और बेबस रहने वाले परिवारों का चित्रण किया है। सोनी साहब की मृत्यु हो जाने पर न्यूयॉर्क में रहने वाला उनका बेटा दाह संस्कार के लिए नहीं आ पाता। और पूछने पर सलाह देता है, "आप ऐसा कीजिए इस काम के लिए किसी ना किसी को बेटा बनाकर दाह संस्कार करवाइए। मेरे लिए 13 दिन रुकना मुश्किल होगा आप सब काम पूरी करवा लीजिए।"[4]

ममता कालिया ने इस उपन्यास के माध्यम से राकेश और रेखा को एक चेहरा दिया है लेकिन यह कहानी उन तमाम बूढ़े माँ बाप का प्रतिनिधित्व करती है जो इस समस्या से गुजर रहे हैं। लेखिका स्वयं कहती है– "यह सब कामयाब संतानों के मां–बाप थे। हर एक के चेहरे पर भय और आशंका के साए थे। बच्चों की सफलता इनके जीवन में सन्नाटा बुन रही थी।"[5]

'रेहन पर रग्घू' इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह जी ने भूमंडलीकरण से होने वाले गाँव में परिवर्तन साथ ही मानवीय संबंधों में पनपती रिक्तता और बिगड़ते मानवीय मूल्यों का सच्चा सटीक चित्रण वृद्ध रग्घू के माध्यम से किया है। कॉलेज में अध्यापक की नौकरी करते हुए रग्घू वहाँ की स्थानीय राजनीति से परेशान हो जाता है तथा उसे कॉलेज से इस्तीफा देना पड़ता है। सारी इज्जत से गाँव में गुजरी हुई जिंदगी बुढ़ापे के समय में पूरी तरह से बदल जाती है। रग्घू का बड़ा बेटा संजय सक्सेना की बेटी सोनल से विवाह कर शहर में बसता है। मझला बेटा धनंजय अपने तरीके से जीवन जीने लगता है और अपनी उम्र से ज्यादा किसी विधवा लड़की के साथ उसकी लड़की के साथ रहता है। बेटी सरला भी अपनी नौकरी की वजह से घर से बाहर रहती है। बड़े बेटे का मर्जी के खिलाफ शादी करना रग्घू को पसंद नहीं है फिर भी वह मन मारकर बैठ लेते हैं। दो बेटों और एक बेटी से भरा पूरा परिवार होने के बावजूद गाँव में अकेलेपन से जूझते रहते हैं। भूमंडलीकरण के कारण होने वाला बदलाव और नई पीढ़ी की बदलती मानसिकता को रग्घू स्वीकार करते हैं अपने बेटे संजय के द्वारा अपनी पत्नी को छोड़ अमेरिका में किसी और गुजराती लड़की से शादी कर वहीं बसना उन्हें परेशान करता है। रमेश की पहली पत्नी सोनम के प्रति उनके मन में करुणा जागती है वह सोनम के साथ उसी के पास शहर में रहते हैं। बदलती इस मानसिकता को इस हद तक अपनाते हैं कि सोनम की उसके पुराने मित्र के साथ शादी कर उसका कन्यादान करने की बात वह सोचते हैं। यहाँ इस उपन्यास में काशीनाथ सिंह जी ने वर्तमान दौर में पारिवारिक जीवन में होता बदलाव, रिश्तों के बीच पनपता अजनबीपन, स्वार्थ केंद्रित बनती जिंदगी आदि पर मार्मिक व्यंग्य किया है। मेरे घर वालों को मेरी कितनी फिक्र है यह जानने हेतु रग्घू खुद को धमकाने के लिए आए हुए गुंडों से अपने आप को किडनेप करवाते हैं। और कहते हैं–

"मुझे ले चलो! अगवा करो मुझे और फिरौती माँगो दो लाख!"

"कौन देगा तुम्हारे जैसे सड़े गले बुड्ढे को दो लाख?"

"सिर्फ दो लाख इसलिए कि रकम नहीं अखरेगी देने में। मिल भी जाएगी और हत्या से भी बच जाओगे।"

"अरे देगा कौन इस सड़े गले का?"

"सड़ा गला तुम्हारे लिए हूँ, बेटों के लिए तो नहीं, बेटी के लिए तो नहीं?"

"मान लो इनमें से कोई फिरौती देने ना आए तो?"

"यही तो देखना है कि कोई आता भी है या नहीं?"

"हम भी यही कह रहे हैं कि कोई न आए तब?"

रघुनाथ ने क्षण भर सोचा– "तो भी चिंता नहीं। तुम्हारी 'पकड़' इतनी गई

गुजरी नहीं। इतना है मेरे पास कि खुद को छुड़ा लूँ!"[6] आज के रिश्तों की वास्तविकता को दर्शाने का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है।

'रेहन पर रग्घू' के सन्दर्भ में अखिलेश लिखते हैं 'रेहन पर रग्घू' प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह की रचना यात्रा का नव्य शिखर है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप संवेदना, संबंध और सामूहिकता की दुनिया में जो निर्मम ध्वंस हुआ है– तब्दीलियों का जो तूफान निर्मित हुआ है– उसका प्रामाणिक और गहन अंकन है 'रेहन पर रग्घू'।"

2000 में प्रकाशित कृष्णा सोबती जी का उपन्यास 'समय सरगम' अपने दौर का अनूठा मौलिक एवं सामाजिक उपन्यास है, जो बुजुर्गों को सयाने ढंग से अपना जीवन जीने का तरीका सिखाता है। 'समय सरगम' उपन्यास ना सिर्फ बुजुर्गों के साथ होने वाली अवहेलना, उनकी त्रासदी, पीड़ा उनके अकेलेपन को दर्शाता है लेकिन साथ ही मृत्यु को नए नजरिए से देखकर जीने की कला सिखाने का महत्वपूर्ण कार्य भी करता है। समय सरगम उपन्यास के ईशान और वो आरण्या बुजुर्ग हैं एक दूसरे के पड़ोसी हैं और दोनों अकेले रहते हैं। दोनों के स्वभाव में भिन्नता है फिर भी उन दोनों में अच्छी दोस्ती है। दोनों जीवन खूब मजे से जीने में विश्वास रखते हैं। इन दोनों की अपनी–अपनी समस्याएँ हैं लेकिन उन समस्याओं से परे अपने जीवन को जीने में विश्वास रखते हैं। इनका यह जीवन जीने का नजरिया कुसुम शर्मा के कथन में स्पष्ट होता है कि, "व्यक्ति अगर चिंतन कर अपने ही जीवन में झांककर देखें तो कभी उसे यह न लगना चाहिए कि उसने जिंदगी जी नहीं है। साथ ही मौत से घबराना भी मौत है मौत से ना घबराना ही जिंदगी है।"[7] समय सरगम उपन्यास में अन्य पात्रों के माध्यम से बुजुर्गों की समस्याओं को चित्रित किया है। उनके अकेलेपन, बेबसी, पीड़ा को दर्शाने के साथ उनकी मानसिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। मृत्यु का भय, बच्चों से मिलने वाली अवहेलना आदि का यथार्थ अंकन किया है लेकिन साथ ही यह उपन्यास ईशान और अरण्या के माध्यम से बुजुर्गों को जीने की कला सिखाता है। इस संदर्भ में इस उपन्यास का महत्व अद्वितीय है।

इसके साथ हिंदी के –

गोविंद मिश्रा – शाम की झिलमिल
बलदेव वैद– दूसरा ना कोई
निर्मल वर्मा – अंतिम अरण्य
मस्तराम कपूर – विषय पुरुष
पंकज विष्ट – उस चिड़िया का नाम
हृदयेश– चार दरवेश
रविन्द्र वर्मा– पत्थर ऊपर पानी

सूरज सिंह नेगी– रिश्तों की आंच

इन उपन्यासों में वृद्ध जीवन पर प्रकाश डाला गया है। जो हमारे समाज में, परिवार में बुजुर्गों की वास्तविक तस्वीर को दर्शाती है।

हिंदी कहानी साहित्य में वृद्ध विमर्श

भौतिक विकास के इस दौर में सबसे ज्यादा आहत परिवार हुआ है। संयुक्त परिवार की संकल्पना कब की नष्ट हो चुकी है। पहले जहाँ घर में बुजुर्ग होने से घर की शान में बढ़ोत्तरी होती थीं; आज वहीं बुजुर्गों के घर पर होना परेशानी का सबब बनने लगा है। इसी कारण बीसवीं शताब्दी के इस दौर में वृद्धाश्रम समस्या उभरकर सामने आयी है। इस समस्या का चित्रण कहानी साहित्य में भी बखूबी हुआ है।

हमारे देश में वृद्धों की दुर्गति ज्यादातर आर्थिक संदर्भ में ज्यादा देखने को मिलती है। वृद्धों की जायदाद हड़पने की परंपरा नई नहीं है। प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'बूढ़ी काकी' में इसका मार्मिक चित्रण किया है। इस कहानी में बूढ़ी काकी की दुर्गत तब शुरू हो जाती है जब काकी अपने बच्चों के मरने के बाद अपनी पूरी जायदाद अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम करती है। जायदाद नाम पर न होने तक बुद्धिराम और उसकी पत्नी रूपा काकी को इज्जत से रखते हैं लेकिन जायदाद नाम पर होते ही उसे तरह तरह से अपमानित करने लगते हैं। भूखा रखते, रुखा सूखा खाने देते तब भी अपमानित करते। प्रेमचंद की पंच परमेश्वर कहानी की खाला भी इसी अपमान से गुजरती है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में घर के न कमाने वाले बुजुर्ग फालतू सामान में बदलते जा रहे हैं। इस मानसिकता में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इसका मार्मिक चित्रण उषा प्रियंवदा की कहानी वापसी में देखने को मिलती है। गजाधर बाबू रेल विभाग की नौकरी से रिटायरमेंट के बाद घर आते हैं लेकिन घर वालों के लिए अब वह अनुपयुक्त बन चुके हैं। उनके घर आते ही उनके बेटे, बहू, बेटी, यहाँ तक कि पत्नी भी उन्हें घर का, परिवार का हिस्सा मानने से इंकार करती है। घर के किसी भी कार्य में उन्हें दखल देने की इजाजत नहीं मिलती और कभी अपना समझकर कुछ कर भी दिया या कह भी दिया तो उन्हें अपमानित कर चुपचाप कोने में पड़े रहने की सलाह दी जाती। दूसरा बेटा हमेशा अपनी पढ़ाई की बात कर उनसे दूरी बनाए रखता, तो पत्नी हमेशा उनके सामने शिकायतों का पिटारा खोलकर रख देती और उनके बेमतलब के होने का उन्हें ताना मारती। इस कहानी में गजाधर बाबू की स्थिति को दर्शाने के लिए प्रतीक के रूप में कहानीकार ने चारपाई का इस्तेमाल किया है। यह चारपाई कभी ड्राइंग रूम में रहती तो कभी रसोई घर में या कभी किसी और जगह पर। घर में इसकी कोई अपनी जगह नहीं है। वक्त के हिसाब से और

अपनी सहूलियत के हिसाब से इसकी जगह बदलती रहती है। नौकरी करते हुए छुट्टियों में घर पर आने के बाद गजाधर बाबू के साथ घर वालों का रवैया और रिटायरमेंट के बाद घर आने के बाद घर वालों का रवैया हमारे बीच पनपती उपयोगितावाद की वास्तविकता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। 1960 में प्रकाशित उषा प्रियवंदा की यह कहानी वृद्ध विमर्श की दृष्टि में आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी में भी माँ की स्थिति घर के फालतू सामान सी दिखाई गई है; जिसकी कोई अपनी अहमियत नहीं है। माँ की अहमियत तब अचानक बढ़ जाती है जब उनके हुनर से बेटे का बॉस माँ की तारीफ करता है। इस कहानी में भी रिश्ते पर स्वार्थ हावी दिखाया गया है।

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी 'यह क्या जगह है दोस्तों' में ऋतु के जीवन की त्रासदी चित्रित की गई है। पति की मृत्यु के बाद उसके बच्चों उसके जीवन पर, उसकी छोटी मोटी ख्वाहिशों पर पाबंदी लगा देते हैं। यह पाबंदी उसे अकेलेपन और बेबसी की तरफ ले जाती है।

'बीच बहस' कहानी में निर्मल वर्मा जी बीमारी से जूझते हुए एक बीमार पिता की बेबसी का चित्रण करते हैं। पिता अस्पताल में हैं। डॉक्टरों ने उनकी कभी भी मृत्यु होने की घोषणा कर दी है, फिर भी वह जिंदा है। बाप का जिंदा होना बेटे के लिए परेशानी का कारण बन चुका है। केयरटेकर बेटा हर समय झुंझलाया रहता है। बहस करते रहता है। अपने बच्चों के इस रवैये पर बूढ़ा पिता अपने आप को बेबस, लाचार और बौना महसूस करता है और मौत की आस में अपनी साँसें गिनता रहता है।

मृणाल पांडे की कहानी 'धूप छांव' माँ के अजनबी पन अकेलेपन की बेबसी को प्रस्तुत करती है। बेटा बड़ा होकर पढ़ लिखकर कमाने के लिए गांव से दूर जाता है और मां जिसने बेटे को पढ़ाने के लिए अपनी पूरी उम्र खर्च कर दी, बेबस और लाचार अकेले घर में रहने के लिए मजबूर हो जाती है। माने अपनी देखभाल के लिए एक अनाथ बच्चे को अपने साथ रखा है जो बेटा छुट्टियों में घर आता है तो उसे अपना घर अजनबी लगने लगता है अपने घर की दयनीय हालत को देखकर वह सोचता है 'धूप छांव के धब्बों से ढका घर एकदम चुप था, इतना चुप कि कभी–कभी लगने लगता था कि वह घर नहीं बल्कि धूप छांव की कोई परिकल्पना भर है।"[8]

'अंधेरे से अंधेरे' इस कहानी में लेखिका मृणाल पांडे जी ने अमेरिका में वयस्कों के अकेलेपन हताश और बेबस मनोदशा का चित्रण मनोहर के माध्यम से किया है। मनोहर अमेरिका में वयस्क और बूढ़े व्यक्तियों को अकेलेपन से टूटते हुए बेचैन पाता है। अमेरिका में भूरे व्यक्तियों की मानसिकता का चित्रण

कहानी के नायक मूवी मनोहर के माध्यम से लेखिका ने मार्मिकता से चित्रित किया। साथ ही दूरियाँ, कैंसर, दुर्घटना, गर्मी आदि कहानियों में मृणाल पांडे जी ने बुजुर्ग जीवन की वास्तविकता का यथार्थ चित्रण किया है।

स्वाति तिवारी की कहानी 'वैतरणी के पार' में भारतीय परिवार में पनपती पुत्र मोह की मानसिकता पर करारा प्रहार किया है। पुत्र मोह में लिप्त माता पिता अपने बेटियों का अनादर करते है लेकिन वही बेटियाँ बेटों के द्वारा सताए जाने पर, अपमानित किए जाने पर, अकेला छोड़े जाने पर उन्हें अपने यहाँ आश्रय देती हैं। कहानी में एक जगह लेखिका पिता के माध्यम से पुत्र मोह के चलते बेटियों पर अन्याय करने के बावजूद बेटियों द्वारा सहारा देने पर उनके मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखती हैं– "तू आ गई तो मेरा सम्मान बच गया, वरना मैं अपने दिए संस्कारों में ही ढूंढता रहता था कि कहाँ कमी रह गई। पर बेटी तूने मुझे आत्मग्लानि से बचा लिया वरना मैं सूरज के उजाले में भी उस घर में फैले अंधेरे से डरने लगा था।"[9]

कहानी के अंत में लेखिका बाबूजी के मंतव्य के द्वारा बुजुर्ग लोगों को आगाह करते हुए महत्वपूर्ण बात कहती हैं–" बेटों की नाव पर बैठकर बुढ़ापे की वैतरणी पार करने वाले समाज में बाबूजी उपेक्षा और तिरस्कार के साथ–साथ अब भूख से भी गले गले तक डूबने लगे थे। ऐसे में तिनके की तरह कोई बेटी आकर आपका हाथ थामे तो उसकी उंगली पकड़ लीजिए बाबूजी, उस हाथ ने कभी आपकी उंगली पकड़कर चलना सीखा था। सही मायनों में उस पर शक से ही आपके स्नेह संस्कार प्रवाहित हुए थे वही संस्कारों की वाहक है।" 10 कहानी द्वारा लेखिका बूढ़े माता–पिता की दुर्गति को दिखाने के साथ पुत्र मोह के चलते बेटियों के होते अनादर की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

स्वाति तिवारी जी ने 'और बांध फूट गया', 'अकेले रह गए वे', 'दूसरा रास्ता' आदि कहानियों में भी बुजुर्गों की बेबसी, अकेलेपन की पीड़ा का वास्तविक बखान किया है।

डॉ. नीरजा माधव की कहानियों में भी वृद्धों की समस्या को चित्रित किया गया है। उनकी बिजूका, सात मील लंबी कहानी, मृत्युपर्व, साँझ से पहले, कतरनों वाली फाईल, अकेले चने की छंदमुक्त लय आदि कहानियों में बुजुर्ग पात्र और उनकी समस्याओं का चित्रण किया गया है।

निष्कर्षतः यही कह सकते हैं कि उपर्युक्त जितना साहित्यिक विवेचन हुआ है उसमें बुजुर्गों की दुरावस्था का ही चित्र देखने को मिलता है। और दुर्भाग्यवश यह कहना होगा कि यह चित्रण साहित्य में उस परिवेश से लिया गया है जहाँ पर माता–पिता को ईश्वर समान माना गया है। जहाँ माता–पिता के कदमों में

जन्नत मानी गई है। उसी परिवेश में बुजुर्गों की यह स्थिति हमारे सांस्कृतिक पतन की वास्तविकता को बयान करती है। अगर सच में हमें बुजुर्गों की स्थिति को सुधारना है तो हमें फिर से अपनी जड़ों की तरफ लौटना होगा। बकौल जहीर कुरैशी...

"हमें बचाना है अगर मुल्क की उजली विरासत,
हमें फिर से अपनी जड़ों की तरफ लौटना होगा।"

संदर्भ

1. चित्रा मुद्गल– गिलिगडु, पृष्ठ क्र. 96
2. वही, पृष्ठ क्र. 63
3. ममता कालिया– दौड़ पृष्ठ क्र 41
4. वही, पृष्ठ क्र. 35
5. वही, पृष्ठ क्र. 69
6. काशीनाथ सिंह– रेहन पर रग्घू, पृष्ठ क्र. 163
7. कुसुम शर्मा– साठोत्तरी हिंदी उपन्यास: विविध प्रयोग, श्याम प्रकाशन, जयपुर प्र सं 1990, पृष्ठ–145
8. मृणाल पांडे, व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डॉ. प्रज्ञा तिवारी, विनय प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ क्रमांक–41
9. स्वाति तिवारी– वैतरणी के पार ('अकेले होते लोग' कहानी संग्रह) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 110
10. वही, 117

हिंदी विभागाध्यक्ष,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
ई. मेल– drmahatas@gmail-com

5

समकालीन कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श

डॉ. धन्यकुमार जिनपाल बिराजदार

सन् 1960 के बाद रचनाकार समाज का दायित्व निभाते हुए कलम चलाते रहें। सन् 1960 के परिवर्ती समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य 'समकालीन साहित्य' कहलाता है। 1960 के बाद की कविता को साठोत्तरी कविता या समकालीन कविता के नाम से अभिहित किया जाने लगा। आखिर समकालीन शब्द का अर्थ क्या है। किसी व्यक्ति के जीवन काल में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में घटित घटना समकालीन घटना है। उससे प्रभावित होकर वह जो अभिव्यक्त करता है, उसे समकालीन रचना कहते हैं। विश्वंभर नाथ उपाध्याय जी ने कहा है, " समकालीन कविता में जो हो रहा है 'बिकमिंग' का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिचय है। "

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आने वाला अंतिम पड़ाव जो किसी के लिए सुखद तो किसी के लिए पीड़ादायक होता है, जहाँ बदलती जीवन शैली तथा उपभोक्तावादी विचार ने अपना प्रभाव छोड़ा है, वह है वृद्धावस्था। एक ओर जीर्ण शरीर, बढ़ती हुई बीमारियाँ तो दूसरी ओर वैश्वीकरण तथा रोजगार के कारण अपने भी पराये बन जाने पर घर में उपेक्षित नजर आते वृद्ध अपनी वृद्धावस्था को अभिशाप मान बैठते हैं। दुनिया के कई देशों में आज वृद्धों की दशा दयनीय बनती नजर आ रही है। सुसंस्कृत भारत में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या मूल्यों के पतन का चित्रण करती है। हिंदी फिल्म 'बागबान' तथा मराठी का विख्यात नाटक 'नटसम्राट' पर बनी फिल्म 'नटसम्राट' वृद्धों की व्यथा की गाथा है। जिस बेटे के लिए पूरा जीवन विपन्नावस्था में बिताया, अपनी पेंशन भी बेटे को दी, वही बेटा माता–पिता की ओर आनाकानी करता हो, कोरोना काल में उनकी ओर ध्यान न देता हो तो उन वृद्धों की मनोदशा कैसी बनती होगी इसकी हम कल्पना भी नहीं कर पाते।

जीवन में धन ही सबकुछ नहीं है, रिश्ते भी महत्त्व रखते हैं परंतु कई युवकों के कारण वृद्धावस्था को शाप मानते हुए आत्महत्या करने का प्रयास